विभाजित हृदय

दाजी

पूज्य श्री लालाजी महाराज

के 153वें जन्मोत्सव पर 1, 2 और 3 फ़रवरी 2026 को

कान्हा शांतिवनम् में दिया गया संदेश।

विभाजित हृदय

प्रिय मित्रों,

मेरे सामने एक व्यक्ति बैठा था जिसकी उम्र पचास के आसपास थी। बाहरी तौर पर वह हर मापदंड पर सफल था लेकिन जब वह बोल रहा था तब उसके हाथ हल्के-से काँप रहे थे। उसने कहा, "मैं जानता हूँ कि मुझे क्या चाहिए और मैं यह भी जानता हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए। फिर भी, जब वह क्षण आता है तब मैं वही कर बैठता हूँ, जिसके लिए मैंने स्वयं से वादा किया था कि अब कभी नहीं करूँगा। हर बार जब मैं अपने आप से किए वादे से पीछे हट जाता हूँ तब ऐसा लगता है मानो अपने अस्तित्व का एक अंश ही खो बैठा हूँ। मुझे अपने किए पर भारी पछतावा होता है, अपने भीतर अत्यधिक शर्म महसूस होती है और फिर भी वही प्रवृत्ति लौट आती है।"

वह न तो हिंसा की बात कर रहा था, न चोरी की और न ही किसी दूसरे के साथ विश्वासघात की। वह उससे कहीं अधिक अंतरंग, कहीं अधिक स्थायी और अपने ही ढंग से कहीं अधिक विनाशकारी विषय की बात कर रहा था – मानव हृदय के भीतर कामना और आकांक्षा के बीच चलने वाला निरंतर संघर्ष।

यह स्वीकृति अनेक रूपों में सामने आती है – वह मध्यवयस्क कार्यकारी जो बाध्यकारी आदतों के चक्र से मुक्त नहीं हो पाता; वह आध्यात्मिक साधक जो निष्ठापूर्वक सफ़ाई तो करता है, फिर भी पाता है कि वही प्रवृत्तियाँ लौट आती

हैं; और वह गृहस्थ, जो बौद्धिक रूप से जानता है कि क्षणिक सुख स्थायी शांति के सामने तुच्छ है, फिर भी प्रलोभन सामने आते ही बहक जाता है। इसके रूप भिन्न होते हैं, पर संरचना एक ही रहती है – एक विभाजित हृदय, जिसका एक भाग मुक्ति की ओर खींचता है और दूसरा बंधन की ओर।

आंतरिक टकराव

जब कोई कहता है, "मेरे भीतर का एक भाग मुक्ति चाहता है और दूसरा मेरी इच्छाओं की पूर्ति करना चाहता है," तब इसका क्या अर्थ होता है? इसका अर्थ यह है कि हृदय ने अभी तक पूर्ण रूप से निर्णय नहीं किया है – या कहें, उसने सोच-समझकर चयन नहीं किया है। मुक्ति की अभिलाषा सच्ची है और इच्छा का आकर्षण भी उतना ही सच्चा है। दोनों एक साथ विद्यमान रहते हैं। जब भीतर से कोई स्पष्ट आंतरिक प्रेरणा नहीं होती तब टकराव के क्षण में वही शक्ति विजयी होती है जो उस समय अधिक प्रबल होती है।

यही प्रेय और श्रेय के बीच का संघर्ष है, सुखद और कल्याणकारी के बीच का द्वंद्व जिसे वैदिक काल से उजागर किया जाता रहा है। जब मन बँटा होता है तब आंतरिक पुकार में वह अनुनाद नहीं रह जाता जो दिव्य तक पहुँच सके, क्योंकि हृदय का आधा भाग अब भी सांसारिक किनारे को थामे रहता है।

अनेक साधक स्वयं को इसी अवस्था में फँसा पाते हैं। वे ध्यान करते हैं, शाम की सफ़ाई करते हैं, दसवें नियम का पालन करते हैं, रात को सोते समय अपनी की गई गलतियों के लिए पश्चात्ताप करते हैं, क्षमा माँगते हैं और उन गलतियों को न दोहराने का वादा करते हैं, फिर भी वह वादा बार-बार टूट जाता है। हर टूटे हुए वादे की कीमत चुकानी पड़ती है – आत्मविश्वास कम होने लगता है, इच्छाशक्ति कमज़ोर पड़ जाती है और उनके भीतर एक सूक्ष्म निराशा घर करने लगती है। धीरे-धीरे उनमें यह भाव उभर आता है कि शायद मुक्ति दूसरों के लिए है, पर उनके लिए नहीं।

तो फिर गलती कहाँ हो गई?

दो भेड़िए

एक प्राचीन शिक्षा है जो अनेक संस्कृतियों में प्रचलित है कि प्रत्येक मानवीय हृदय के भीतर दो भेड़िए निवास करते हैं। एक भेड़िया हमारे उच्चतर स्वभाव – धैर्य, करुणा, सत्य, अनुशासन और शाश्वत तत्त्वों के प्रति प्रेम – का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरा भेड़िया हमारे निम्न स्वभाव – आवेग, लालसा, छल, भोग-विलास और नश्वर वस्तुओं में आसक्ति – का प्रतीक है।

एक युवक ने अपने गुरु से पूछा, "इनमें से कौन-सा भेड़िया जीत जाता है?" गुरु ने शांत स्वर में उत्तर दिया, "वही विजयी होता है जिसे तुम पोषित करते हो।"

यह शिक्षा तो सरल है लेकिन इसे लागू करना आसान नहीं है। जो साधक लगातार इच्छाओं से जूझता है, वह दोनों भेड़ियों (स्वभावों) को पोषित कर रहा है। सुबह के ध्यान में, उच्चतर भेड़िये को उसका अंश मिलता है और शाम की सफ़ाई में वही उच्चतर भेड़िया और अधिक सुदृढ़ होता है। स्पष्टता और दृढ़ संकल्प के क्षणों में वह उच्चतर भेड़िया पुष्ट होता है।

फिर एक उत्तेजना होती है और निम्नतर भेड़िया (स्वभाव) जिसे अतिभोग, कल्पना और प्रत्याशा के गुप्त सुख से पोषण मिलता रहा है, वह अपनी पूरी शक्ति के साथ उठ खड़ा होता है। उस टकराव के क्षण में वही भेड़िया विजयी होता है जो अधिक बलवान होता है। समस्या यह नहीं है कि साधक में निम्नतर प्रकृति है – यह तो सभी में होती है। समस्या यह है कि पोषण अत्यधिक संतुलित रहा है, जिसने दोनों भेड़ियों को जीवित और सशक्त बनाए रखा है। संघर्ष इसलिए चलता रहता है क्योंकि किसी भी पक्ष को निर्णायक रूप से कमज़ोर होने नहीं दिया गया है।

केवल सफ़ाई क्यों पर्याप्त नहीं हो सकती

हार्टफुलनेस की सफ़ाई का अभ्यास अत्यंत गहन है। हर शाम साधक अपने मन में यह भाव लेकर बैठता है कि दिनभर की जटिलताएँ व अशुद्धियाँ पीठ के पीछे से बाहर निकल रही हैं और सामने से दिव्य प्रकाश भीतर प्रवेश कर रहा है। छापें निकल जाती हैं और तंत्र हल्का हो जाता है। ऐसा लगता है कि मुक्ति समीप है। फिर भी कुछ साधक यह अनुभव करते हैं कि वर्षों की निष्ठापूर्ण सफ़ाई के बाद भी कुछ प्रवृत्तियाँ ज्यों-की-त्यों बनी रहती हैं। उनकी इच्छाएँ पुनः लौट आती हैं, कभी-कभी पहले से भी अधिक तीव्र रूप में और वही सिलसिला चलता रहता है। ऐसा क्यों होता है?

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि सफ़ाई वही हटाती है जिसे हृदय सचमुच छोड़ने के लिए तैयार होता है। जब किसी प्रवृत्ति को भीतर ही भीतर सँजोकर रखा जाता है, जब मन का कोई सूक्ष्म भाग उसे गुप्त स्नेह के साथ पकड़े रहता है तब सफ़ाई में रुकावट आती है। यह विधि अपने स्तर पर कार्य करती रहती है

पर गहरी जड़ सुरक्षित रह जाती है क्योंकि वह प्रवृत्ति उस पहचान द्वारा संरक्षित होती है, जिसकी वह सेवा करती है।

इस बात पर विचार करें कि जब दिन भर उसी पैटर्न को दोहराने के बाद शाम को सफ़ाई की जाती है तब क्या होता है? मन पछताता है, हृदय में अफ़सोस होता है, क्षमा के लिए प्रार्थना की जाती है और फिर उन्हीं गलतियों को न दोहराने का एक वादा भी किया जाता है। अब सवाल है – यह वादा कितना सच्चा है?

अधूरे मन से की गई प्रार्थना

किसी वस्तु को चाहने की इच्छा रखना और उसे वास्तव में चाहना – इन दोनों में गहरा अंतर है। एक साधक जो निरंतर इच्छाओं से संघर्ष कर रहा है, वह सचमुच उनसे मुक्ति चाह सकता है। खेद के क्षण में यह चाह तीव्र होती है। प्रार्थना के समय आकांक्षा सच्ची लगती है। ध्यान की शांति में तो मुक्ति अत्यंत समीप जान पड़ती है।

फिर वह उत्तेजना प्रकट होती है। कोई परिस्थिति सामने आती है और तंत्रिका-तंत्र में पुराना मार्ग अचानक सक्रिय हो उठता है और अकसर ऐसी प्रतिक्रियाओं की ओर ले जाता है जो गहन अवचेतन में दबी होती हैं। सहसा उच्चतर को प्राप्त करने की वह समस्त आकांक्षा गायब हो जाती है। जो शेष रह जाता है, वह है इच्छा का प्राकृतिक खिंचाव। उसी क्षण साधक यह स्पष्ट देख लेता है कि उसकी आकांक्षा की जड़ें वास्तव में कितनी उथली थीं।

किसी वस्तु को चाहने की इच्छा रखना और उसे वास्तव में चाहना – इन दोनों में गहरा अंतर है। एक साधक जो निरंतर इच्छाओं से संघर्ष कर रहा है, वह सचमुच उनसे मुक्ति चाह सकता है। खेद के क्षण में यह चाह तीव्र होती है। प्रार्थना के समय आकांक्षा सच्ची लगती है। ध्यान की शांति में तो मुक्ति अत्यंत समीप जान पड़ती है।

यह कोई पाखंड नहीं है, यही मानवीय स्थिति है। समस्या यह नहीं कि हम मुक्ति चाहने के बारे में झूठ बोलते हैं। समस्या यह है कि हमने अब तक ऐसी गहरी आकांक्षा विकसित नहीं की है जो इस टकराव में जीवित रह सके। प्रार्थना वास्तविक है लेकिन आधे मन से की गई है।

व्यापारी और साधु

एक पारंपरिक कथा इसे सुंदर ढंग से दर्शाती है। एक व्यापारी साधु के पास आया। वह बहुत परेशान था क्योंकि अपने ग्राहकों को धोखा देने से वह स्वयं को रोक नहीं पा रहा था।

उसने कहा, "मैं जानता हूँ कि यह गलत है। हर शाम मैं ईमानदार रहने का संकल्प लेता हूँ, फिर भी हर सुबह पाता हूँ कि मैं फिर से झूठ बोल रहा हूँ। मुझमें क्या दोष है?"

साधु ने पूछा, "जब तुम शाम को यह संकल्प लेते हो तब क्या तुम सच में ईमानदार रहना चाहते हो?" व्यापारी ने उत्तर दिया, "हाँ, बिलकुल।"

"और जब सुबह होती है और ग्राहक तुम्हारे सामने खड़ा होता है, क्या तब भी तुम ईमानदार रहना चाहते हो?"

व्यापारी कुछ देर रुककर बोला, "उस क्षण मैं बिक्री अधिक चाहता हूँ।"

साधु ने समझाया, "तो तुम्हारा शाम का संकल्प एक व्यक्ति द्वारा लिया गया है और सुबह का निर्णय दूसरे व्यक्ति द्वारा। जब तक ये दोनों व्यक्ति एक नहीं हो जाते तब तक तुम्हारा संकल्प टूटता रहेगा।"

व्यापारी ने पूछा कि इन्हें एक कैसे किया जाए। साधु ने उत्तर दिया, "तुम्हें यह जानना होगा कि बिक्री से भी अधिक तुम क्या चाहते हो। जब तुम उसे जान लोगे तब झूठ बोलना अपने आप बंद हो जाएगा।"

इच्छाशक्ति का क्षरण

बार-बार की असफलता में एक यांत्रिक सिद्धांत कार्य करता है। हर बार का गिरना अगले प्रयास के लिए संरचना को और कमज़ोर कर देता है। एक पुल जिसे किसी निश्चित भार को सहने के लिए बनाया गया है, वह एक बार थोड़े अधिक भार को सह सकता है लेकिन यदि यह बार–बार होता है तो उसमें छोटी-छोटी दरारें पड़ने लगती हैं। भले ही बाहर से पुल अभी भी मज़बूत दिखाई दे लेकिन क्षति भीतर ही भीतर होती रहती है। अंततः, जो भार मामूली प्रतीत होता था वही बड़ी तबाही का कारण बन जाता है।

इच्छाशक्ति भी इसी तरह कार्य करती है। हर बार जब इसे दबा दिया जाता है, हर बार जब उच्चतर मन का स्पष्ट निर्णय इच्छा के वेग से नकार दिया जाता है तब कुछ न कुछ टूटता है। हो सकता है यह दरार दिखाई न दे लेकिन क्षति भीतर ही भीतर बढ़ती रहती है।

यही कारण है कि जिस साधक का बार-बार पतन हुआ है, उसका अकसर कहना है कि वह पहले से भी अधिक कमज़ोर महसूस करता है। जिन साधकों ने आशा की थी कि अभ्यास उन्हें दृढ़ बनाएगा लेकिन बार-बार की असफलताओं ने उनकी उस क्षमता का ही क्षय कर दिया, जिसे वे विकसित करने की कोशिश कर रहे थे। इच्छाशक्ति की परीक्षा लेने से बचना समाधान नहीं है; समाधान यह है कि उसे बार-बार असफल होने के लिए तैयार करना बंद किया जाए।

सत्यनिष्ठ मूल्यांकन

परिवर्तन की शुरुआत हृदय की वास्तविक स्थिति को पूरी ईमानदारी से समझने से होती है। हममें से अधिकांश अपनी मुक्ति के प्रति प्रतिबद्धता को अधिक आँकते हैं और अपनी आदतों के प्रति आसक्ति को कम आँकते हैं। यह गलत मूल्यांकन उन वादों की ओर ले जाता है जिन्हें निभाया नहीं जा सकता और यही वह क्षय है जिसका वर्णन ऊपर किया गया है।

सत्यनिष्ठ मूल्यांकन कैसा होगा? इसका अर्थ होगा बिना किसी शर्म या बचाव के अपने भीतर की वास्तविक चाहत को स्वीकार करना। 1 से 10 तक के पैमाने पर आप वास्तव में कितनी मुक्ति चाहते हैं? और उसी पैमाने पर आपकी आदत जो सुख प्रदान करती है, उसका आकर्षण कितना प्रबल है?

अनेक लोगों के लिए इसका सच्चा जवाब उन्हें विनम्र बना देता है। मुक्ति की आकांक्षा शायद 5 या 6 दर्ज होती है, जबकि पुरानी आदत का खिंचाव 8 या 9 हो सकता है। इन अनुपातों को देखते हुए, किसी भी टकराव का परिणाम पहले से बताया जा सकता है। फिर भी, यह निराशा का कारण नहीं है; यह रणनीति बनाने का कारण है। यदि आपकी आकांक्षा इच्छा के खिंचाव से कमज़ोर हो जाती है तो अपनी आकांक्षा पर कार्य करें। ऐसे वादे न करें जिन्हें मौजूदा अनुपात पूरा नहीं कर सकता। इसके बजाए अनुपात को ही बदलने पर ध्यान दें।

इस तड़प को क्या बढ़ाता है?

दिव्यता के प्रति तड़प इच्छाशक्ति से नहीं बढ़ती; यह दिव्य की संगति और उससे उत्पन्न होने वाले तारतम्य से विकसित होती है।

जब हम ध्यान में समय बिताते हैं तब हमारी चेतन अनुभूति से परे भी कुछ घटित होता है। साधक का तंत्र प्राणाहुति को ग्रहण करता है और हृदय उस सम्प्रेषित अवस्था का कुछ अंश अपने भीतर आत्मसात कर लेता है। समय बीतने के साथ, प्राणाहुति का निरंतर सम्प्रेषण एक नया आधार बनाता है, एक नई सामान्य अवस्था बनती है और हमारे अंदर सम्भावनाओं की नई समझ उत्पन्न होती है।

इसी कारण सत्संग अर्थात् सत्य के संग को इतना महत्त्व दिया गया है। जब हम किसी गुरु के सान्निध्य में होते हैं या ऐसे समर्पित प्रशिक्षक के साथ बैठते हैं जिनमें पूर्ण तड़प है तब हमारे हृदय में भी कुछ स्पंदित होने लगता है। उच्चतर आकांक्षा की उस आवृत्ति के साथ हमारे भीतर एक स्पंदन उत्पन्न होता है और धीरे-धीरे हमारी अपनी आवृत्ति भी परिवर्तित होने लगती है।

जब हम ध्यान में समय बिताते हैं तब हमारी चेतन अनुभूति से परे भी कुछ घटित होता है। साधक का तंत्र प्राणाहुति को ग्रहण करता है और हृदय उस सम्प्रेषित अवस्था का कुछ अंश अपने भीतर आत्मसात कर लेता है। समय बीतने के साथ, प्राणाहुति का निरंतर सम्प्रेषण एक नया आधार बनाता है, एक नई सामान्य अवस्था बनती है और हमारे अंदर सम्भावनाओं की नई समझ उत्पन्न होती है।

इसी प्रकार, उन महापुरुषों के वचनों को पढ़ने में बिताया गया समय जिन्होंने यह यात्रा पूरी कर ली है, हमारे संस्कारों और प्रवृत्तियों से परे के सत्य पर मनन करने में बिताया गया समय और ऐसी सेवा में बिताया गया समय जिसमें ध्यान स्वयं से हटकर दूसरों की ओर जाता है – ये सारा समय भीतर के उच्चतर पक्ष को पोषित करता है जबकि निम्नतर पक्ष को कम ध्यान मिलता है। जब ध्यान उच्चतर लक्ष्य पर टिकता है तब निम्नतर प्रवृत्तियों को स्वतः ही कम बल मिलता है। इस प्रकार, एक को पोषण मिलता है और दूसरा धीरे-धीरे क्षीण होने लगता है।

यह परिवर्तन धीरे-धीरे होता है। एक दिन हम देखते हैं कि सुबह किसी व्यक्ति या स्थिति से सामना अब पहले जैसा नहीं रहा। प्रतिक्रियात्मक खिंचाव अभी भी हो सकता है लेकिन उसके साथ अब कुछ और भी उपस्थित होता है – कुछ ऐसा जो पहले नहीं था या था तो बहुत कमज़ोर था। अब अनुपात बदल गया है।

अंतरात्मा की पुकार की गुणवत्ता

बाबूजी महाराज ने एक बार कहा था कि यदि ईश्वर के लिए तड़प उतनी ही प्रबल हो जाए जितनी सांसारिक विषयों के लिए होती है तो आत्म-साक्षात्कार तत्काल हो जाएगा।

आइए, इसका अर्थ समझें। जब कोई तीव्र इच्छा उत्पन्न होती है, वह हमारे पूरे अस्तित्व को प्रभावित करती है। विचार, भावना, शरीर और इच्छाशक्ति सब उसके पूर्ण होने की दिशा में एक साथ प्रवृत्त हो जाते हैं। विरोध अपने आप ढह जाता है क्योंकि उसके सामने कोई समान शक्ति वाला शेष नहीं रहता। अब

कल्पना करें, यदि मुक्ति की आकांक्षा भी उतनी ही सर्वग्राही हो जाए तो क्या होगा? तब उसे निम्नतर इच्छाओं से संघर्ष करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी क्योंकि वह उन्हें अपने में विलीन कर लेगी। जैसे एक बड़ी नदी छोटी धारा को अपने भीतर समा लेती है, वैसे ही उच्चतर आकांक्षा की प्रबल धारा समस्त प्रवाह को एक ही दिशा में बहा ले जाएगी।

इसी कारण अधूरे मन से की गई प्रार्थना हमें रूपांतरित नहीं कर सकती। इसी कारण ऊपर-ऊपर का पश्चात्ताप हमारी गहरी प्रवृत्तियों और संस्कारों को छूकर लौट जाता है। यहाँ तीव्रता में असमानता है – मुक्ति की लालसा एक दीपक के समान है, जबकि आदत का खिंचाव एक प्रज्वलित अग्नि के समान। जब तक यह अनुपात नहीं बदलता, परिणाम पहले से ही निश्चित रहता है।

ककून और तितली

यह एक ऐसे आदमी की कहानी है जिसने किसी दिन एक ककून देखा। उसके भीतर से एक तितली बाहर आने के लिए संघर्ष कर रही थी। ककून से बाहर निकलने का रास्ता बहुत छोटा था और तितली घंटों तक जोर लगाकर घोर परिश्रम करती रही। उस आदमी को तितली पर दया आ गई। उसने कैंची ली और ककून को थोड़ा काट दिया, ताकि रास्ता बड़ा हो जाए। तितली आसानी से बाहर तो आ गई लेकिन उसका शरीर सूज गया था और पंख सिकुड़ गए थे। इसलिए वह कभी उड़ नहीं सकी।

वह आदमी यह नहीं समझा पाया कि उस छोटे से मार्ग से होकर बाहर निकलने का संघर्ष प्रकृति की योजना का हिस्सा था। उसी संघर्ष के द्वारा तितली के शरीर का द्रव उसके पंखों में प्रवाहित होना था। जो कठिनाई उसे क्रूर प्रतीत हो रही थी, वही तितली के उड़ने की क्षमता के लिए आवश्यक थी। उसी प्रकार, जो साधक अपने मार्ग से संघर्ष को हटाने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है, वह अनजाने में यह माँग कर रहा होता है कि उसकी प्रगति की क्षमता ही सिकुड़ जाए।

अनेक साधक अपनी प्रवृत्तियों से मुक्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। वे ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उनकी इच्छाओं का अंत हो जाए, उनकी इच्छाशक्ति दृढ़ हो जाए और साधना का मार्ग सरल बन जाए लेकिन अकसर ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ भी नहीं बदल रहा। इच्छा बनी रहती है, इच्छाशक्ति कमज़ोर ही रहती है और मार्ग कठिन ही लगता है। इससे कुछ साधकों के भीतर संदेह उत्पन्न हो जाता है और श्रद्धा डगमगाने लगती है। वे सोचते हैं कि ईश्वर उनकी सुन नहीं रहा, ईश्वर को उनकी परवाह नहीं है या शायद ईश्वर है ही नहीं। लेकिन एक अन्य सम्भावना भी है।

क्या होगा यदि ईश्वर कठिनाई को ही रूपांतरण का साधन बनाए? क्या होगा यदि संघर्ष ही वह माध्यम हो, जिसके द्वारा साधक वह आंतरिक शक्ति विकसित करता है जो मुक्ति के लिए आवश्यक है? ज़रा इसके विपरीत की कल्पना करें। यदि हर बार निवेदन करते ही ईश्वर प्रत्येक कष्टदायक प्रवृत्ति को हटा दे तो साधक आध्यात्मिक रूप से अपरिपक्व ही रह जाएगा। उसके भीतर वह आंतरिक सामर्थ्य कभी विकसित नहीं होगा, जिसकी सच्ची स्वतंत्रता

के लिए आवश्यकता है। वह मुक्त तो हो जाएगा पर स्वतंत्र नहीं बनेगा। इसलिए संघर्ष ईश्वर की उदासीनता का प्रमाण नहीं है; वह तो सीखने और प्रगति करने का साधन है।

सच्चे पश्चात्ताप का क्षण

खेद और पश्चात्ताप में अंतर है। खेद कहता है, "काश मैंने ऐसा नहीं किया होता। मुझे इसका दुःख है और आशा है कि अगली बार बेहतर करूँगा।" पश्चात्ताप कहता है, "मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि मैं क्या करता आया हूँ, उसकी क्या कीमत चुकानी पड़ी है और यह भी समझता हूँ कि मैं अब ऐसा करना जारी नहीं रख सकता। अब मेरे भीतर कुछ बदलता है और मैं एक नई दिशा की ओर उन्मुख होता हूँ।"

खेद भावनात्मक होता है और अकसर अपराधबोध और शर्मिंदगी के बढ़ते बोझ के साथ जुड़ा होता है जबकि पश्चात्ताप अस्तित्वगत होता है। खेद चेतन स्तर पर आता-जाता रहता है लेकिन यह हमारी अवचेतन प्रवृत्तियों पर लगातार प्रभाव डालता रहता है। जबकि पश्चात्ताप एक स्पष्ट पहले और बाद की स्थिति

खेद बनाम पश्चात्ताप – बदलाव की संरचना

को चिन्हित करता है और यह प्रवृत्तियों को भंग करने के लिए कार्य की माँग करता है।

बाबूजी महाराज का [1] दसवाँ सिद्धांत केवल खेद नहीं, बल्कि पश्चात्ताप पर बल देता है। बाबूजी द्वारा वर्णित प्रार्थी मनोभाव स्वयं के प्रति दया या दुःख का भाव नहीं है, बल्कि यह ईश्वर के समक्ष बालसुलभ सच्चाई व्यक्त करने की दशा है – न कुछ छिपाना, न कोई बचाव केवल हृदय की वास्तविक दशा प्रस्तुत करना और सहायता के लिए आग्रह करना।

जब पश्चात्ताप वास्तविक होता है तब साधक ऐसे वादे नहीं करता जिन्हें वह निभा न सके। इसके बजाए वह कहता है, "मैं यही हूँ। मैं यही करता आया हूँ। मुझे नहीं पता कि मैं इसे रोक पाऊँगा या नहीं लेकिन मुझे मालूम हैं कि मैं रोकना चाहता हूँ। कृपया मेरी सहायता करें।" इस प्रकार की प्रार्थना हमारी आदतों और प्रवृत्तियों से अधिक गहराई तक पहुँचती है। ऐसी सच्चाई कृपा के कार्य करने के लिए मार्ग बनाती है जहाँ प्रयास असफल हो चुका है।

हमारी व्यवहारिक प्रवृत्तियाँ वास्तव में क्या चाहती हैं

एक रहस्य है जो इच्छाओं के साथ हमारे सम्बन्ध को तुरन्त बदल देता है – हमारी आदतें वास्तव में वही नहीं चाहतीं जो हमें लगता है कि वे चाहती हैं; वे इससे कहीं गहरे सत्य की ओर संकेत कर रही होती हैं। शारीरिक सुख की लालसा के मूल में ऐक्य के लिए तड़प होती है। क्षणिक संतोष के लिए बेचैनी के मूल में स्थायी पूर्णता की खोज होती है। क्षणभंगुर से आसक्ति के मूल में शाश्वत को पकड़े रखने का प्रयास होता है। हमारी प्रवृत्तियाँ जो खोज रही हैं, उसमें कुछ गलत नहीं है; गलती केवल इस बात में है कि वे उसे कहाँ खोज रही हैं।

जब यह समझ लिया जाएगा तब हम अपनी प्रवृत्तियों से जुझेंगे नहीं बल्कि उनका सामना करुणा से करेंगे – "मैं देख रहा हूँ कि तुम क्या खोज रहे हो। यह यहाँ नहीं है लेकिन मैं जानता हूँ कि यह कहाँ है। मेरे साथ आओ।"

---

* रामचन्द्र 2019, सहज मार्ग के दस नियमों की व्याख्या, श्री रामचन्द्र मिशन, भारत

यह प्रतिक्रिया किसी प्रवृत्ति से लड़ने, उसे दबाने या उसके अस्तित्व को नकारने से भिन्न है। लड़ाई केवल दोनों पक्षों को मज़बूत करती है और नकारना अवचेतन में इस प्रवृत्ति को बढ़ाते जाता है, जहाँ यह फिर से सक्रिय हो सकती है। वहीं, किसी बात पर प्रकाश डालने से गलतफ़हमी जड़ से समाप्त हो जाती है।

वह मोड़ जो सब कुछ बदल देता है

यात्रा के किसी मोड़ पर कुछ बदल जाता है। यह कोई भव्य परिवर्तन नहीं होता और न ही कोई धूमधाम होती है। अकसर हम इसे तुरन्त महसूस नहीं करते लेकिन हमारा केंद्रीय संतुलन बदल जाता है। पहले, हृदय मुख्यतः सुख की ओर झुका रहता था और कभी-कभी मुक्ति की ओर देख लेता था। अब, हृदय मुक्ति की ओर झुका रहता है और पुरानी प्रवृत्तियों की खींचतान कभी-कभार ही महसूस होती है। खींचतान जारी रहती है लेकिन हृदय की मुख्य दिशा बदल चुकी होती है।

यह बदलाव जबरदस्ती नहीं किया जा सकता लेकिन हम इसके लिए तैयारी कर सकते हैं। एक व्यक्ति जो नाव चलाना सीख रहा है, उसकी नाव तेज़ हवा और ऊँची लहरों में पलट जाएगी; फिर भी, अंततः लगातार अभ्यास से वह कुशल नाविक बन जाएगा और कैसे भी मौसम में नाव को चला लेगा। इसी प्रकार, हमारी साधना है – दैनिक सफ़ाई, दैनिक ध्यान, ईमानदारी से अपना मूल्यांकन करना, बार-बार विफल होने के अनुभवों से सीखना और अपनी प्रवृत्तियों के परे की वास्तविकताओं से परिचित होना – ये सब हमें आगे की यात्रा के लिए तैयार करते हैं। फिर जब हृदय तैयार होता है तब समय से कृपा के द्वारा बदलाव आता है।

उसके लिए जो बार-बार विफल होता है

यदि आप इसे पढ़ रहे हैं और अपना संघर्ष पहचान पा रहे हैं तो यह जान लें कि बार-बार विफल होना व्यर्थ नहीं गया है। हर एक विफलता ने आपके भीतर कुछ न कुछ जोड़ा है और हर बार उठ खड़े होने ने आपको भीतर से मज़बूत

बनाया है। यह तथ्य कि आप विफलता के इस सत्य को महसूस कर रहे हैं, इस बात का संकेत है कि आपके भीतर कुछ ऐसा है जिसने अभी हार नहीं मानी है।

अब उसी प्रकार के और प्रयास की आवश्यकता नहीं है, बल्कि चाहने की गुणवत्ता में परिवर्तन की है। इसके लिए कुछ सुझाव इस प्रकार हैं –

ऐसे वादे करना बंद करें जिन्हें आप निभा नहीं सकते। इसके बजाए ईमानदारी से आत्म-मूल्यांकन करें कि आप वास्तव में कितनी स्वतंत्रता चाहते हैं? इसे इस बात से तौलें कि आपकी इच्छाओं के स्वरूप आपको कितनी शक्ति से अपनी ओर खींचते हैं। स्पष्ट रहें, निडर रहें और इन परस्पर आकर्षणों के प्रति सजग हो जाएँ।

फिर अपने आप से यह प्रश्न करें, "यह अनुपात कैसे बदलेगा?" यह परिवर्तन केवल इच्छाशक्ति के बल से या नैतिक प्रयास से नहीं होगा। यह तब होगा, जब आप बड़ी भूख यानी उच्चतर आकांक्षा को पोषित करेंगे और छोटी इच्छाओं की उपेक्षा करेंगे। यह तभी होगा जब आप स्वयं को उस प्राणाहुति के प्रति ग्रहणशील रखेंगे जो हृदय में गहरी तड़प को जाग्रत करती है और जब आप ऐसे लोगों की संगति में रहेंगे जिनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण आपको अपनी ही सर्वोच्च सम्भावना का स्मरण कराता है।

वह वादा जो निभाने योग्य है

एक ही वादा ऐसा है जो निभाने योग्य है – लगातार प्रयत्न करते रहने का वादा। हर बार सफल होने का वादा करना व्यर्थ है, क्योंकि वह मनुष्य के वश में नहीं है। प्रयत्न करते रहना, बार-बार उठ खड़े होना और हृदय को निरंतर परम लक्ष्य की ओर उन्मुख करना – ये सब हमारी पहुँच में हैं।

ईश्वर प्रगति को असफलता के अभाव से नहीं मापता; वह उसे साधना की निरंतरता से मापता है। जो साधक हज़ार बार गिरकर हज़ार एकवीं बार उठ खड़ा होता है, उसने यह सिद्ध कर दिया कि उसने मार्ग का त्याग नहीं किया

है। यह न छोड़ने का संकल्प ही विजय है और यह निरंतरता ही रूपांतरण है। कालांतर में जो प्रयास हठपूर्ण और यांत्रिक प्रतीत होता है, वही स्वाभाविक प्रवृत्ति बन जाता है। जो संघर्ष था, वह प्रवाह बन जाता है और जो विभाजित था, वह एकीकृत हो जाता है।

विभाजित हृदय सदा के लिए विभाजित नहीं रहता।
एक दिन बिना किसी दिखावे के वह सहज ही अपनी दिशा पा लेता है।

और तब उसे आश्चर्य होता है कि वह पहले कभी किसी दूसरी ओर क्यों मुड़ा था।

✦

अंतःकरण के भीतर का यह संघर्ष वास्तविक है। इससे होकर जाने का मार्ग है – सच्ची तड़प। इसका परिणाम चेतना की प्रकृति में पहले से ही अंकित है – जो सत्य है, वही टिकता है और जो असत्य है, वह स्वयं क्षीण हो जाता है। आपका कार्य है स्वयं को बार-बार सत्य के पक्ष में रखना जब तक यह सुयोजन स्थायी न हो जाए। इसी सुयोजन का नाम है स्वतंत्रता।

और स्वतंत्रता आपको घर बुला रही है।

ॐ शांति, शांति, शांति।

प्रेम और आदरसहित
कमलेश
पूज्य श्री लालाजी महाराज का 153वाँ जन्मोत्सव, 2 फ़रवरी 2026

पूज्य श्री लालाजी महाराज के 153वें जन्मोत्सव
पर 1, 2 और 3 फरवरी 2026 को
कान्हा शांतिवनम् में दिया गया संदेश।

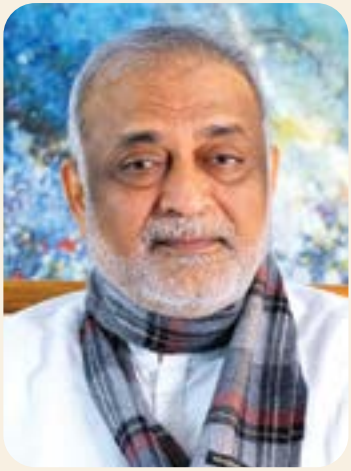

दाजी के साथ मास्टरक्लास

आप किसी भी समय हार्टफुलनेस ध्यान का आरम्भ कर सकते हैं। दाजी के साथ तीन सत्रों की मास्टरक्लास श्रृंखला से जुड़ें जिसमें वे हार्टफुलनेस मार्ग के लाभ को साझा करते हैं और यह स्पष्ट करते हैं कि हार्टफुलनेस रिलैक्सेशन, ध्यान, सफ़ाई और प्रार्थना को अपनी दिनचर्या में कैसे समाहित किया जाए। सभी मास्टरक्लास पूर्णतः निःशुल्क हैं।

https://heartfulness.org/global/masterclass/

हार्टफुलनेस अभ्यास

हार्टफुलनेस के अभ्यासों को जानें – रिलैक्सेशन, ध्यान, सफ़ाई और प्रार्थना करना सीखें।

https://heartfulness.org/in–en/heartfulness–practices/

हार्टफुलनेस

पवित्रता से प्रारब्ध